

## श्रीसद्गुरु की प्राप्ति

भक्तकोकिलजी दो-चार महीनों में ही किसी अज्ञात प्रेरणा से खिंचे हुए-से एक डाक्टर के साथ कोट-कांगड़ा में जा पहुँचे । उन दिनों वहाँ भूकम्प के कारण त्राहि-त्राहि मच रही थी । लोग अपने घर-द्वार, सगे-सम्बन्धी और अन्न-वस्त्रों से भी वंचित हो गये थे । भगवान् दीनबन्धु हैं इसलिये भक्तजनों को दीनजन अपने कोई खास सम्बन्धी जान पड़ते हैं । जहाँ दीन होंगे, वहाँ भगवान् और भक्त भी होंगे । वहीं बैठकर भगवान् जीवों को अपनी भक्ति और सेवा के लिये पुकारते हैं । भक्त-कोकिल को वहाँ पहुँचकर भगवान् की सेवा करने का अवसर तो मिला ही, उन सन्त-सद्गुरु की भी प्राप्ति हुई जिनके लिये वर्षों से उनके प्राण आकुल हो रहे थे और जिनकी प्यास से छटपटाते हुए ही वे इधर-उधर भटक रहे थे ।

कोट-कांगड़ा में भूकम्प होने के बाद अनेकों सज्जन सत्पुरुष वहाँ दीनःदुखियों की सेवा करने के लिये वहाँ आये हुए थे । सभी अपने-अपने शिविरों में ठहरकर अपनी शक्ति एवं रुचि के अनुसार सेवाकार्य में संलग्न थे । एक दिन भक्तकोकिलजी को अभूतपूर्व आकर्षण का अनुभव हुआ । उनको ऐसा लगा कि जिसको मैं ढूँढ़ रहा हूँ, वह यहीं है । चकोर को चन्द्रमा की ओर एवं मयूर को मेघ की ओर आकर्षित करने के लिये शिक्षा नहीं देनी पड़ती । यह तो हृदय का स्वभाव ही है कि वह जिसको ढूँढ़ रहा है, उसके आसपास होनेपर वह एक दिव्य रसमय

प्रणय-निमन्त्रण का अन्तर आवाहन सुनने लगता है । भक्त-कोकिलजी सेवाकार्य के लिये समागत सत्पुरुषों के शिविरों के पास से निकले तो उन्हें एक शिविर में किसी दिव्य आश्चर्यमय प्रकाश का दर्शन हुआ । वे जान गये कि जिस सन्त सद्गुरु की खोज में हूं, वे यही हैं । यह शिविर था स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराज का, जो बंगाल से भूकम्प पीड़ित जनता की सहायता करने के लिये आये हुये थे । भक्तकोकिलजी खिंच गये और उनके शिविर के द्वार पर बैठकर गीतापाठ करने लगे । दूसरे दिन भी किया । तीसरे दिन परम दयालु सन्त महापुरुष ने उन्हें भीतर बुलाकर पूछा - “क्यों बेटा, क्या कर रहे हो ?”

भक्तकोकिल बोले - “गीतापाठ ।”

सन्त - “तुम्हारे मस्तक में श्रीअवधसरकार की भक्ति झलक रही है ।”

भक्तकोकिल - “आप जो आज्ञा करेंगे, वही करूंगा ।।”

श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराज ने भक्तकोकिल के हृदय की रुझान, उनके जन्म-जन्म की, युग-युग की साध, साधना, प्रीति, भक्तिरस और रसकी स्थिति पहचान ली । उन्होंने भक्तकोकिल जी को वैसा ही उपदेश किया । फिर वे डाक्टर के पास नहीं रहे । तभी से भक्तकोकिल जी उनकी ही सेवा में रहकर भगवान् की आराधना करने लगे ।

सन्तशिरोमणि स्वामी श्री अविनाशचन्द्र जी महाराज भगवान् के परम अनुरागी थे । भक्तकोकिल जी सत्संग में कहा करते थे कि

भगवान् के पूर्ण अनुराग के रंग में रंगा हुआ यदि कोई हृदय मैंने देखा है तो केवल उन्हीं का । स्वामी श्री अविनाश चन्द्र जी महाराज के प्रति भक्तकोकिल जी का बहुत ही ऊंचा भाव था । अखण्ड श्रद्धा थी । वे सम्पूर्ण रूप से आत्म समर्पण करके उनकी सेवा में लग गये । यद्यपि उनकी सेवा में और भी बहुत लोग थे तथापि भक्तकोकिल की चेष्टा यही रहती थी कि सब-की-सब सेवा मैं ही करूं । स्नान के लिये जल भरना, शरीर में तेल मालिश करना, स्नान कराना, वस्त्र धोना, पाँव दबाना, पंखा झलना, सब काम पूरे उत्साह एवं प्रीति के साथ करते थे । स्वामी श्रीअविनाशचन्द्र जी स्नान करते-करते भाव में मग्न हो जाते थे और भगवान् की अद्भुत अश्रुत एवं अत्यन्त मधुर लीलाओं के अनुभव करते थे । उस समय भक्तकोकिल जी उनके पास ही रहकर उन्हें पंखा झलते रहते थे ।

श्रीगुरुसेवा कभी निष्फल नहीं जाती । श्रीगुरु की सेवा ही भगवान् और अन्तरात्मा की सेवा है । सेवाकार्य में सेव्य को उतना ही लाभ नहीं होता जितना सेवक को होता है । सेव्य की सेवा तो कोई भी वेतनभोगी नौकर भी कर सकता है, परन्तु सेवक के अन्तःकरण का निर्माण, उसमें त्याग, तपस्या, सहिष्णुता, वैराग्य, समता, एकाग्रता, सावधानी, प्रीति आदि का उदय केवल सेवा से ही हो सकता है । सेवक की यही सेवा करने के लिये आवश्यकता न होने पर भी गुरुजन सेवा स्वीकार करते हैं ।

जिस समय सन्त श्रीअविनाशचन्द्रजी भगवान् के भजन में तन्मय

हो जाते, भक्तकोकिलजी भी सेवा करते हुए उनकी तन्मयता का आनन्द लेते रहते ।

एक दिन ऐसे ही अवसर पर एक दिव्य झाँकी के दर्शन हुए । वह यह थी- श्रीगंगाजी का तट है । रंग बिरंगे पुष्पों से लदे हरे-भरे वृक्षों की पंक्ति है । हरिण बछड़े आदि उछल-कूद रहे हैं । गौएं हरी-हरी घास चरकर जुगाली कर रही हैं । रंग-बिरंगे शुक-पिकादि पक्षी चहक रहे हैं, अच्छा ! यह तो कोई आश्रम है । अवश्य ही यह महर्षि वाल्मीकिजी का आश्रम है । भक्तकोकिलजी ने देखा- इसी महर्षि के आश्रम में सर्वेश्वर हृदयेश्वरी पतिप्राणा जगज्जननी अवध-सरकार सतीगुरु श्रीजनकनन्दिनीजू अपने प्राणेश्वर प्रियतम के पुनर्विरह से अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं । उनके रोम-रोम से अग्नि स्फुलिंग के समान “श्रीराम” “श्रीराम” -इस अनाहत ध्वनि के साथ विरह-बोधक साम ऋचाएं निकल रही हैं । निदाघ को दहकती हुई गरमी में अपने झुण्ड से बिछुड़ी हुई मृगी के समान विकल हो दीर्घ श्वास ले रहीं हैं । भक्तकोकिलजी के देखते ही देखते उनके मुख से एक चीत्कार निकला और वे बेसुध होकर अपनी माता वसुन्धरा की गोद में सो गयीं, वृक्ष की शाखाओं पर बैठे हंस-हंसनी आदि पक्षियों ने नीचे उतरकर उन्हें चारों ओर से घेर लिया और उनकी रक्षा करने लगे । धूम्रसार मेघों का हृदय भी द्रवित हो

गया । उन्हींने श्रीस्वामिनी के ऊपर छाया की और फुहियाँ बरसायीं । कोकिल ने वात्सल्य से भरकर 'श्रीराम' 'श्रीराम' उच्चारण किया । तापस-कुमारियों ने सचेत किया । वे प्रियतम राघवेन्द्र विरह से व्याकुल, क्षुधा-तृषा से जर्जरित, स्वजन-सम्बन्धियों से तिरस्कृत होकर व्यथित हृदय से बार-बार अपने हृदयेश्वर का स्मरण करतीं और वाताहत लता के समान मूर्छित होकर पृथ्वी का आलिंगन करने लगती थीं ।

इस झाँकी के दर्शन से भक्तकोकिल जी की दशा ही कुछ और हो गयी । प्राण व्याकुल हो उठे, नेत्रों में आँसू छलक आये, शरीर में रोमांच हो आया, देह की सुधि-बुधि जाती रही । श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराज ने भजन से उठकर धैर्य धारण कराया तब ही जाकर भक्तकोकिलजी सावधान हुए । सन्त सद्गुरु ने आज्ञा की कि अब तुम इसी भावना को धारण करो ।

मनुष्य के हृदय में युग-युग के, जन्म-जन्म के संसार संचित रहते हैं । जिसके संस्कार साधना के, भजन के, भगवद्भक्ति के होते हैं; छिपाये से छिपते नहीं । सन्त सद्गुरु का सान्निध्य प्राप्त होते ही वे उभर आते हैं । फिर जिसके साथ खेलने का संकल्प स्वयं भगवान् ने कर रखा हो उसके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है ! भगवान् कोई न कोई निमित्त बनाकर अथवा बिना निमित्त के ही अपनी साधना की, प्रेम की, सारी पूँजी उसे सौंप देते

हैं । ऐसे भाग्यवान् के जीवन में साधनाओं का ऐसा विकास होता है कि मानो वे स्वयं ही उसमें प्रकट होने के लिये उत्सुक हों । स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराज ने भक्तकोकिलजी को एक साधना बतायी । भक्तकोकिलजी ने मानो पहले से ही पूरी कर रखी हो, तीन महीने में ही उसे पूर्ण कर दिया । भक्तकोकिलजी की यह स्वाभाविक सिद्धि देखकर सन्त-सद्गुरु ने कहा कि “इतनी उन्नति, इतनी सफलता तो और किसी को तीन वर्ष में भी नहीं मिल सकती थी ।” जिसपर भगवान की कृपा है, जो उनका अपना है, उसके लिये आश्चर्य और असम्भव क्या है !

सन्त सद्गुरु श्रीअविनाशचन्द्रजी ने भक्तकोकिलजी से कहा-“पहले एक इष्ट का निश्चय होना चाहिये अर्थात् एक परमात्मा की ही इच्छा होनी चाहिये । यदि इष्ट अर्थात् इच्छा के विषय अनके होंगे तो एकाग्रता किसमें होगी ? इष्ट की एकता से ही ध्यान होता है । जो अलग-अलग अनेक इष्टों की इच्छा होती है वह तो बाहरी नाम-रूप के भेदपर दृष्टि डालने के कारण है । सब इष्ट मूलतः आनन्दरूप में एक हैं । अपना इष्ट ही आनन्द है । सबके अन्तर्यामी कर्ता-धर्ता सर्वेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये- यह बुद्धिमती जीव रूपिणी स्त्री अपने इष्ट से मिल जाय ! विचार कर इस बात का उत्तर दो कि कहनेवाला, सननेवाला और करनेवाला कौन है ?

भक्तकोकिलजी कुछ दिन कोटकांगड़ा में और फिर लाहौर-

में श्रीस्वामी अविनाशचन्द्रजी के साथ रहे । भगवद्गुणानुवाद, भजन, सेवा आदि में संलग्न रहने के कारण आठ महीने कैसे बीत गये इसका पता ही नहीं चला । जब श्रीस्वामी अविनाश-चन्द्रजी महाराज लाहौर से बंगाल लौटने लगे तब उन्होंने भक्त-कोकिलजी को यह उपदेश किया-“अपने इष्ट को सर्वश्रेष्ठ मानना परन्तु दूसरे के इष्ट को छोटा समझकर निन्दा नहीं करनी और किसी मजहब को, सम्प्रदाय को बुरा न मानना । जहाँ जो सच्चाई हो, ईमानदारी हो-उसे स्वीकार करना ।” भक्तकोकिलजी ने इन उपदेशों को सर्वदा के लिये अपने हृदय में धारण कर लिया ।

एक ओर सन्त सद्गुरु की आज्ञा और दूसरी ओर उनका वियोग ! इस विषम स्थिति पर विजय प्राप्त करने के लिये भक्त-कोकिलजी ने सन्त सद्गुरु से अपने सहारे के सम्बन्ध में प्रार्थना की । सद्गुरु ने कहा-“श्रीगुरुग्रन्थसाहब ही सर्वश्रेष्ठ आश्रय है । तुम्हारी जो इच्छा होगी उन्हीं के आश्रय से पूर्ण होगी । कराची में ब्रह्मसमाज के सतम्भ श्रीकेशवचन्द्रसेन के शिष्य श्री नन्दलालसेनजी हमारे मित्र रहते हैं । उनसे कभी-कभी मिल लिया करना ।”

करुणारस भरे वेण वाली श्रीवेदवती का बालु न बांका होय, सदा सहर्षित रहे ॥३३॥

केवल विवाह समय ही उन राजलक्ष्मी को दिन चन्द्रमावत् अशोभित कर, अपने शृंगार की ऐसी दिव्य छटा फैलाई कि सबको अपान सुधि से मुग्ध करने वाला शृंगार रस फैला ।

इस साकेतपुरी में वितीत हुई महारानियों ने भी पांव धारण किया था, जैसे कि-दिलीप, रघू, अज, दशरथ, सुदक्षणा, प्रभावती, इन्दुमती और राणी कौशल्या जूँ ? इन्होंने भी अपने सौभाग्य रूप चरणों को अयोध्यापुरी में रखा था, किन्तु महारानी भूतनया भली स्वामिनी ने जो राज समाज की अद्भुत छटा फैलाई, इसका क्रोड़वाँ अंश भी आगे की रानियों ने शोभा न कराई ।